

घिर गई है भारतमाता

(युवा पत्रकार राजेश मिश्रा के कहने पर मैंने कुछ पुराने लेख नए पाठकों के अध्ययन और विचार के लिए फिर से प्रेषित करने का सिलसिला शुरू किया है। उसी कड़ी में यह लेख है। अप्रैल 2012 में लिखा गया यह लेख 'युवा संवाद' मासिक के मई 2012 अंक में समय-संवाद स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित हुआ था।)

प्रेम सिंह

ये भी तो मादरे हिंद की बेटी है!

करीब पांच साल पहले की बात है। हम परिवार के साथ कार में रात के करीब साढ़े र्यारह बजे नोएडा से एक शादी से लौट रहे थे। गाजीपुर चौराहे पर अंधेरा था और कड़ाके की ठंड थी। करीब पंद्रह साल की एक लड़की लाल बत्ती पर गजरा बेच रही थी। लिबास से वह खानाबदोश या फिर आदिवासी समाज से लग रही थी। वह थोड़ी ही दूरी पर खड़ी थी, लेकिन धूसर शरीर और कपड़ों में उसकी शक्ल साफ नहीं दिख रही थी। हालांकि यह साफ था कि वह कुपोषण के चलते पतली-दुबली है। हमने इधर-उधर नजर दौड़ाई। उसके साथियों में और कोई नजर नहीं आया। वह चौराहा शहर के बाहर और सुनसान था, जहां लड़की के साथ कुछ भी हो सकता था। हमने यह मान कर मन को तसल्ली दी कि उसके कोई न कोई साथी जरूर आस-पास कहीं होंगे; लड़की अकेली नहीं है। इतनी रात गए अकेली कैसे हो सकती है? हमें तब नागार्जुन की उपर्युक्त काव्य-पंक्ति अनायास याद आई थी। मादरे हिंद की एक बेटी यह भी है!

हम काफी दिनों तक उस लड़की की दशा पर कोई लेख या कविता लिखने की बात सोचते रहे। हालांकि लिखा नहीं गया। सोचा, लोग कब से गरीबों, वंचितों, शोषितों को विषय बना कर लिखते आ रहे हैं। उसे मुक्ति का, क्रांति का साहित्य कह कर उसका संघर्ष और सौंदर्य-मूल्य भी सिद्ध कर दिया जाता है। लेकिन भारत के शहरों की गंदी बस्तियों, झुग्गियों, लाल बतियों, फुटपाथों पर भीड़ बढ़ती ही जाती है। उन्हें मानव कहना मुश्किल लगता है; नागरिक तो कभी बन ही नहीं सकते। उस दिन खास बात थी तो यही कि वह अकेली लड़की एक-दो रूपये के लिए इतनी रात गए वहां थी।

हमें लगा कि जिस तरह पूँजीवादी कंपनियों के लिए जल, जंगल, जमीन संसाधन हैं, लेखकों के लिए कंपनियों द्वारा उनकी जड़ों से उजाड़ा गया जीवन भी संसाधन है। कंपनियों को जैसे ज्यादा से ज्यादा मुनाफा चाहिए, रचना के बदले लेखकों को भी नाम और नकद पुरस्कार चाहिए - ज्यादा से ज्यादा और बड़ा से बड़ा। जो सरकार कंपनियों को ठेके देती हैं, वही लिखने वालों को

पद और पुरस्कार देती हैं। इधर कंपनियां भी अपने पुरस्कार देने लगी हैं। 'रचना सत्ता का प्रतिपक्ष होती है', 'सत्ता रचना/रचनाकार से भय खाती है' - इस तरह की टेक को ऊंचा उठाए रखते हुए लेखकों ने वे पुरस्कार लेने भी शुरू कर दिए हैं। आने वाले समय में कंपनियों की ओर से कुछ पद भी ऑफर किए जा सकते हैं। यूरोप और अमेरिका में लंबे समय से यह चल रहा है।

बहरहाल, हमने उस लड़की पर कुछ लिखा नहीं। उसे रात के अंधेरे में वहां देख कर सहानुभूति का एक तीव्र ज्वार उठा था। आज साफ लगता है कि लिखे जाने पर जो भी मुक्ति होती, वह अपनी ही होती। उस लड़की की मुक्ति से उसका कोई साझा नहीं होता। पांच साल बाद देखते हैं कि वह लड़की और ज्यादा अकेली होती और अमानवीय परिस्थितियों में घिरती जा रही है। इतिहास, विचारधारा, मुक्ति, प्रतिबद्धता, सरोकार, सहानुभूति आदि पद निकम्मे घोषित किए जा चुके हैं। उस लड़की के संदर्भ उन्हें एक दिन निकम्मे साबित होना ही था। क्योंकि वे पूँजीवाद के पेट से उठाए गए थे। जिस दिन पूँजीवाद को मानव सभ्यता के विकास में क्रांतिकारी चरण होने का प्रमाणपत्र मिला था, उसी दिन यह तय हो गया था कि वह लड़की महानगर के चौराहे पर रात के अंधेरे में अकेली कोई सामान बेचेगी। और उसकी एक अन्य बहन को उसका मालिक ताले में बंद करके सपरिवार निश्चिंत विदेश घूमने निकल जाएगा। यह तय हो गया था कि यह भारत सहित पूरी दुनिया में अनेक जगहों पर अनेक रूपों में होगा। भारत में पिछले 20-25 सालों में इस प्रक्रिया में खासी तेजी आई है।

पिछले दिनों देश की राजधानी दिल्ली की मध्यवर्गीय आवास कॉलोनी द्वारिका के एक मकान से पुलिस ने एक 13 साल की घरेलू नौकरानी को डॉक्टर दंपत्ति के घर की कैद से छुड़ाया। डॉक्टर दंपत्ति मार्च (2012) के अंतिम सप्ताह में उसे घर में बंद करके अपनी बेटी के साथ थार्फलैंड की सैर पर गए थे। 6 दिन बाद बालकनी से पड़ोसियों ने लड़की की पुकार सुनी। वह पहले भी पुकार करती रही थी, लेकिन किसी ने उसकी मदद नहीं की। 30 मार्च को एक एनजीओ की मदद से पुलिस को बुलाया गया। पुलिस ने फायर इंजिन बुला कर लड़की को कैद से बाहर निकाला। यह मामला मीडिया में काफी चर्चित रहा। खबरों में आया कि लड़की भूखी, डरी हुई और बेहाल थी। मालिकों ने लड़की को उसके लिए छोड़े गए खाने के अलावा रसोई से कुछ और नहीं खाने के लिए सख्ती से मना किया था। खबरों के मुताबिक लड़की ने मालिकों द्वारा अक्सर प्रताड़ित किए जाने की बात भी कही।

मामला टीवी और अखबारों में आने से, जाहिर है, डॉक्टर दंपत्ति के रिश्तेदारों ने उन्हें बैंकाक में सूचित कर दिया। वे आए और पुलिस से बचते रहे। उन्होंने कहा कि उनकी नौकरानी बच्ची नहीं, 18 साल की बालिग है और उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाता रहा है। वे उसे साथ ले

जाना चाहते थे, लेकिन लड़की ने जाने से इंकार कर दिया। जो भी हो, मामला पकड़ में आ गया था, पुलिस ने डॉक्टर दंपत्ति को न्यायिक हिरासत में लिया। अब वे जमानत पर हैं और अदालत में केस दायर है। लोग अभी से उसके बारे में भूल चुके हैं। हो सकता है कोई गंभीर पत्रकार मामले में आगे रुचि ले और केस की प्रगति और नतीजे के बारे में बताए। और उस लड़की के बारे में भी कि उसका क्या हुआ? उसे क्या न्याय मिला?

जैसा कि अक्सर होता है, इस मामले में भी मीडिया की खबरों में लड़की को मेड (Maid) अथवा घरेलू नौकरानी लिखा/कहा गया है। लड़की का उत्पीड़न करने वाले डॉक्टर दंपत्ति का नाम - संजय वर्मा, सुमित्रा वर्मा - हर खबर में पढ़ने/सुनने में आया। काफी खोजने पर हमें लड़की का नाम एक जगह सोना लिखा मिला। हालांकि हमें यह नाम असली नहीं लगता। लड़की की मां जब झारखंड से आई तो उसका नाम भी मीडिया में पढ़ने को नहीं मिला। उसे लड़की की मां लिखा और कहा गया है। भारत का मध्यवर्ग अपने बच्चों के नामकरण के पीछे कितना पागल होता है, इसकी एक झलक अशोक सेक्सरिया की कहानी 'राइजिंग टू द अकेजन' में देखी जा सकती है। पिछले, विशेषकर 25 सालों में सुंदर-सुंदर संस्कृतनिष्ठ नाम रखने की देश में जबरदस्त चला चली हुई है। केवल द्विज जातियां ही नहीं, शूद्र और अनुसूचित जाति और जनजाति से मध्यवर्ग में प्रवेश पाने वाले दूसरी-तीसरी पीढ़ी के लोग द्विजों की देखा-देखी यह करते हैं। लाड़लों पर लाड तो उड़ेला जाता ही है; भारत का मध्यवर्ग अपने सांस्कृतिक खोखल को सांस्कृतिक किस्म के नामों से भरने की कोशिश करता है। इस समाज में झारखंड के आदिवासी इलाके से आने वाली निरक्षर मां-बेटियों का नाम नहीं होता।

यह मामला सुर्खियों में आने पर नागरिक समाज ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया मानो वे स्वयं ऐसा कुछ नहीं करते, जो डॉक्टर दंपत्ति ने किया। मानो वह कॉलोनी दिल्ली या देश में एक विरल मामला था, जो भले पड़ोसियों के चलते समय पर सामने आ गया। कानून तोड़ने और लड़की के साथ अमानवीय व्यवहार करने वाले शख्स को गिरफ्तार कर लिया गया। अब पुलिस और कानून अपना काम करेगा। ऐसा सोचने में उसका पीड़िता से कोई सरोकार नहीं, खुद से है। ऐसा सोच कर वह अपने को कानून का पाबंद नागरिक और परम मानवीय इंसान मानने की तसल्ली पा लेता है। इस तसल्ली में अगर कुछ कमी रह जाती है तो वह बाबाओं के दर्शन और प्रवचन से पूरी करता है। इस झूठी तसल्ली में वह इतना सच्चा हो जाता है कि गंदी राजनीति और राजनेताओं पर अक्सर तीखे हमला बोलता है। उनके द्वारा कर दी गई देश की दुर्दशा पर आक्रोश व्यक्त करता है। राजनीति को बुरा बताते वक्त भी राजनैतिक सुधार उसकी इच्छा नहीं होती, वैसा करके वह अपने अच्छा होने का भ्रम पालता है। यह सच्ची बात है कि भारत की

मौजूदा राजनीति बुरी बन चुकी है। लेकिन बुरी राजनीति की मलाई काटने की सच्चाई मध्यवर्ग छिपा लेता है।

हम सब जानते हैं कि भारत में कारखानों, ढाबों, दुकानों से लेकर घरों तक में बाल मजदूरों की भरमार है। शहर की लाल बतियों पर छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां तमाशा दिखाते, कोई सामान बेचते या भीख मांगते मिलते हैं। जो 14 साल से ऊपर हो जाते हैं, उन्हें भी हाड़तोड़ श्रम के बदले सही से दो वक्त पेट भरने लायक मेहनताना नहीं मिलता। सुबह 6 बजे से रात 8 बजे तक माइयां कालोनियों में इस घर से उस घर चुका-बर्तन, झाड़ु-बुहारू, कपड़े धोने, बच्चे सम्हालने और खाना बनाने के काम में चकरी की तरह घूमती हैं। वे दस-बीस रुपया बढ़ाने को कह दें तो सारे मोहल्ले में हल्ला हो जाता है। उनके मेहनताने - ज्यादा से ज्यादा काम, कम से कम भुगतान - को लेकर पूरे मध्यवर्गीय भारत में गजब का एका है।

दूसरी तरफ, मध्यवर्ग के लोग जिस महकमे, कंपनी या व्यापार में काम करते हैं, अपने सहित पूरे परिवार की हर तरह की सुविधा-सुरक्षा मांगते और प्राप्त करते हैं। इसमें संततियों के लिए ज्यादा से ज्यादा संपत्ति जोड़ना भी शामिल है। फिर भी उनका पूरा नहीं पड़ता। वे कमाई के और जरिए निकालते हैं। रिश्वत लेते हैं; टैक्स बचाते हैं; अपने निजी फायदे के लिए कानून तोड़ते हैं। अभिनेता, खिलाड़ी, विश्व सुंदरियां, कलाकार, जावेद अख्तर जैसे लेखक अपने फन से होने वाली अंधी कमाई से संतुष्ट नहीं रहते। वे विज्ञापन की दुनिया में भी डट कर कमाई करते हैं। सरकारें ऐसी प्रतिभाओं से लोक-कल्याण के संदेश भी प्रसारित करवाती हैं। वे अपनी अंधी कमाई को लेकर जरा भी शंकित हुए देश की आन-बान-शान का उपदेश झाड़ते हैं। इस तरह अपनी बड़ी-छोटी सोने की लंका खड़ी करके उसे और मजबूत बनाने में जीवन के अंत काल तक जुटे रहते हैं। इनकी हविस का कोई अंत नहीं है। रोजाना सोना जैसे करोड़ों बचपन तिल-तिल दफन होते हैं, तब उनकी यह दुनिया बनती और चलती है।

भोग की लालसा में फंसे मध्यवर्ग का एक और रोचक पहलू है, जो फिल्मों और साहित्य में भी देखा जा सकता है। यह सब करते वक्त उन्हें अपनी मजबूरी सोना की मां की मजबूरी से भी बड़ी लगती है, जिसे अपनी नाबालिग लड़की अंधेरे में धकेलनी पड़ती है। 'पापी पेट की मजबूरी' में वे झूठ बोलने, धोखा देने, फ्लर्ट करने, प्रपंच रचने की खुली छूट लेते हैं। कई बार यह पैंतरा भी लिया जाता है कि हम भी तो कुछ पाने के लिए अपनी आत्मा को अंधेरे में धकेलते हैं! (रोशनी दिखाने वाले बाबा लोग न हो तो जीना कितना मुश्किल हो जाए!) लोग यह भी जानते हैं कि देश में चाइल्ड लेबर (प्रोहिबिशन एंड रेगुलेशन) एक्ट 2006 है। लेकिन उसकी शायद ही कोई परवाह करता है। कुछ एनजीओ और स्वयंसेवी संस्थाएं ही इस मुद्दे पर सक्रिय रहते हैं। बाकी

कहीं से कोई आवाज नहीं उठती कि बचपन को कैद और प्रताड़ित करने वालों के खिलाफ कड़ी कानूनी कार्रवाई हो; अगर मौजूदा कानून में कमी है तो उसे और प्रभावी बनाया जाए। कड़क लोकपाल की स्वतंत्र संस्था और कानून बनाने के लिए आसमान सिर पर उठाने वाले लोग ये ही हैं। उनके लिए ही बाल मजदूरी और सस्ती मजदूरी की यह 'प्रथा' चल रही है। वह न चले तो इनका जीवन भी चलना असंभव हो जाएगा।

आइए सोना की बात करें। सोना अपनी मां की बेटी है। लेकिन क्या वह भारतमाता की भी बेटी है? नागार्जुन ने अपनी कविता में जब आराम फरमा मादा सुअर का चित्रण किया, तो वे उसकी मस्ती और स्वतंत्र हस्ती पर फिदा हुए लगते हैं - 'देखो मादरे हिंद की गोद में उसकी कैसी-कैसी बेटियां खेलती हैं!' कविता का शीर्षक 'ऐने दांतों वाली ...' कविता की अंतिम पंक्ति है। शायद कवि कहना चाहता है कि "जमना किनारे/मखमली दूबों पर/पूस की गुनगुनी धूप में/पसर कर लेटी .../यह ... मादरे हिंद की बेटी ..." अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ है।

सोना का वह भाग्य नहीं है। उससे भारतमाता की गोद छीन ली गई है। भारतमाता सोना की मां जैसी ही मजबूर कर दी गई है, जिसे अपनी बेटी अनजाने देश भेजनी पड़ती है, जहां वह सीधे वेश्यावृत्ति के धंधे में भी धकेली जा सकती है। वह चाह कर भी अपनी बेटी को अपने पास नहीं रख सकती। पूँजीवादी आधुनिक सभ्यता आदिवासियों को उनके घर-परिवेश-परिजनों से उखाड़ कर जमती है। ऐसा नहीं है कि नागरिक समाज में ईमानदार और दयालु लोग नहीं हैं, या नवउदारवाद के चलते आगे नहीं रहेंगे। लेकिन उससे अनेकार्थी विषमताजनित शोषण नहीं रुकेगा। आदिवासी लड़कियों, महिलाओं, लड़कों, पुरुषों को अपने घर-परिवेश से निकल कर हमारे घरों और निर्माण स्थालों पर आना ही होगा।

आपको याद होगा अन्ना आंदोलन के दौरान दिल्ली में पोस्टर लगे थे कि देश की बेटी किरण बेटी जैसी होनी चाहिए - 'देश की बेटी कैसी हो, किरण बेटी जैसी हो।' किरण बेटी काफी चर्चा में रहती हैं। कहती हैं, जो भी करती हैं, देश की सेवा में करती हैं। सवाल है - मादरे हिंद की बेटी कौन है? किरण बेटी या सोना? आप कह सकते हैं दोनों हैं। लेकिन हम सोना को मादरे हिंद की बेटी मानते हैं। इसलिए नहीं कि हमारी ज्यादा सही समझ और पक्षधरता है। सोनाएं किरण बेटियों के मुकाबले भारी सख्त्या में हैं, और किसी का बिना शोषण किए, बिना बेर्झमानी किए, बिना देश-सेवा का ढिंढोरा पीटे, दिन-रात श्रम करके, किफायत करके अपना जीवन चलाती हैं। यौन शोषण समेत अनेक तरह की प्रताड़नाएं सहती हैं। अपनी ऐसी गरीब बेटियों के लिए हर मां मरती-पचती और आंसू बहाती है। सोनाओं की मांओं के समुच्चय का नाम ही भारत माता है। इस भारतमाता को कपूतों ने एकजुट होकर अपनी कैद में कर लिया है।

कपूतों की करतूत

हमारे गांव के पंडित लिखीराम अब दुनिया में नहीं हैं। वे एक स्वरचित गीत गाते थे। गीत के बोल बड़े मार्मिक और रोमांच पैदा करने वाले थे। गीत की टेक थी - 'भारतमाता रोती जाती निकल हजारों कोस गया'। हजारों कोस का बीहड़ रास्ता हमारी बचपनी नजरों के सामने खिंच जाता था, जिस पर रोती-बिलखती भारतमाता नंगे पांव चली जाती थी। गीत सुखांत नहीं था। भगत सिंह और उनके पहले के क्रांतिकारियों की शहादत, सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज और गांधी जी की हत्या पर गीत समाप्त होता था। तब हमें राष्ट्रवाद, उसकी विचारधारा और वर्ग-चरित्र के बारे में जानकारी नहीं थी। हम अपनी जन्म देने वाली मां के अलावा एक और मां - भारतमाता - से जुड़ाव का अनुभव करते थे, और पाते थे कि वह कष्ट में है। भावना होती थी कि भारतमाता के कष्ट का निवारण होना चाहिए। तब हमें भारतमाता साड़ी, मुकुट और गहनों में सजी-धजी नहीं दिखाई देती थी। उसके हाथ में तिरंगा भी नहीं होता था। वह गांव की औरतों के वेश में उन्हीं जैसी लगती थी।

बड़े होकर भी हम पंडित लिखीराम का गीत सुनते रहे। भारतमाता की विशिष्ट छवि, उससे संबंधित साहित्य और बहसों के बीच बचपन में पंडित लिखीराम द्वारा खींची गई भारतमाता की तस्वीर मौजूद रहती रही है। 'मैला आंचल' में तैवारी जी का गीत - 'गंगा रे जमुनवा की धार नवनवा से नीर बही। फूटल भारथिया के भाग भारतमाता रोई रही।' पढ़ा तो उसकी टान (लय) पंडित लिखीराम के गीत की टान के साथ खट से जुड़ गई। तैवारी जी के गीत की टान को सुन कर बावनदास आजादी के आंदोलन में खिंचा चला आया था। उस टान पर वह अपना जीवन आजादी के संघर्ष में बिता देता है। अंत में माफिया द्वारा निर्ममता पूर्वक मारा भी जाता है। उसे मारा ही जाना था, क्योंकि वह यह सच्चाई जान लेता है कि आजादी के बावजूद भारतमाता को स्वार्थी तत्वों ने कब्जे में ले लिया है और वह जार-जार रो रही है। बावनदास गांधी का अंधभक्त है। भारतमाता अंग्रेजों की कैद से छूट कर कपूतों के हाथ में पड़ गई है - इस सच्चाई पर वह कोई 'निगोसिएशन' करने को तैयार नहीं था। उसकी वैसी तैयारी ही नहीं थी। वह राजनैतिक से अधिक नैतिक धरातल पर जीता था। भला भारतमाता को लेकर सौदेबाजी की जा सकती है? वह अहिंसक क्रांतिकारी था।

हमारे मित्र चमनलाल ने भगत सिंह पर काम किया है। काम को और बढ़ाने के लिए उन्होंने भारत में नवउदारवाद के प्रतिष्ठापक मनमोहन सिंह को पत्र लिखा था। पता नहीं मनमोहन सिंह ने उनकी बात सुनी या नहीं। एक बार वे कह रहे थे कि भगत सिंह जिंदा रहते तो भारत के लेनिन होते। उनसे कोई पूछ सकता है कि नवउदारवादी मनमोहन सिंह से भगत सिंह पर काम

के लिए मदद मांगने का क्या तर्क बनता है; और भगत सिंह लेनिन क्यों होते, भगत सिंह क्यों नहीं होते? किन्हीं रूपकिशोर कपूर द्वारा 1930 के दशक में बनाए गये एक चित्र की प्रतिलिपि मिलती है। उसमें भगत सिंह तलवार से अपना सिर काट कर दोनों हाथों से भारतमाता को अर्पित कर रहा है। भारतमाता भगत सिंह को हाथ उठा कर रोते हुए आशीर्वाद दे रही है। (संदर्भ: 'मैप्स, मदर/गोडेस, मार्टिडम इन मॉडर्न इंडिया)।

नवजागरणकालीन चिंतकों, क्रांतिकारियों, कवियों-लेखकों, चित्रकारों ने विविध प्रसंगों में भारतमाता की छवि का अंकन किया है। 'भारतमाता ग्रामवासिनी' से लेकर 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' के रूप में उसके गुण गए गए हैं। भारतमाता की छवि की राष्ट्रीय और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में भूमिका की सीमाएं और अंतर्विरोध आज हम जानते हैं। विद्वानों के लिए शोध का यह एक प्रमुख विषय है। लेकिन हम यह भूल गए हैं कि क्रांतिकारियों का आंदोलन हो या गांधी के नेतृत्व में चलने वाला आंदोलन या इन दोनों से पहले आदिवासियों और किसानों का आंदोलन - उनमें भारतमाता को पूँजीवादी बेड़ियों से मुक्त करने की मंशा थी। आजादी के बाद समाजवादी और कम्युनिस्ट आंदोलन की तो टेक ही पूँजीवाद विरोध थी। तो फिर यह कैसे हुआ कि देशी-विदेशी कारपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, हथियारों से लेकर हर तरह की दलाली करने वालों, बिल्डरों, माफियाओं, नेताओं, बुद्धिजीवियों ने एका बना कर भारतमाता को घेर लिया है? सब मिल कर उसे नवउदारवादी हमाम में धकेल रहे हैं। निर्लज्जों ने भारतमाता की लाज बचाने का ठेका उठा लिया है!

हम यहां टीम अन्ना और उसके आंदोलन पर इसलिए चर्चा करना चाहेंगे क्योंकि वे भारतमाता का नाम बढ़-चढ़ कर लेने वालों में हैं। इस विषय में ज्यादातर जो आलोचना या विरोध हुआ वह यह कि टीम अन्ना ने जंतर-मंतर पर भारतमाता की जो तस्वीर लगाई, वह आरएसएस लगाता है। यह बहुत ही सतही आलोचना या विरोध है। हमने आलोचकों से पूछा था कि जो आरएसएस की भारतमाता से खफा हैं, वे बताएं कि उनकी अपनी भारतमाता कौन-सी है? दूसरे, आरएसएस की भारतमाता की तस्वीर से क्या परहेज हो सकता है, जब पूरा आरएसएस ही आंदोलन में मौजूद है? भारतमाता के घिराव में टीम अन्ना की सहभागिता पर थोड़ा विचार करते हैं।

अन्ना आंदोलन के दौरान सबसे ज्यादा अवमूल्यन भाषा का हुआ है। इस आंदोलन की बाबत यह गंभीर मसला है। कहीं से कोई वाकया उठा लीजिए, उसमें बड़बोलापन और खोखलापन एक साथ दिखाई देगा। आंदोलन में कई गंभीर लोग शामिल हुए। कुछ बाहर आ गए, कुछ अभी वहीं हैं। ऐसे लोगों की भाषा पर भी असर आया है। उनकी भाषा पिछली ताकत खो बैठी। जब विरोधी पृष्ठभूमियों के और विरोधी लक्ष्य लेकर चलने वाले व्यक्ति या समूह आंदोलन के उद्देश्य से

एक साथ आते हैं तो भाषा में छल-कपट और सतहीपन आता ही है। टीम अन्ना के प्रमुख सदस्यों द्वारा भाषा का अवमूल्यन अभी जारी है। उसकी प्रमुख सदस्य किरण बेदी ने हाल में कहा कि अन्ना हजारे, बाबा रामदेव और श्री श्री रविशंकर तीन फकीर हैं, जो देश का कल्याण करने निकले हैं। हमें 1989 का वह नारा - 'राजा नहीं फकीर है, भारत की तकदीर है' - याद आ गया, जो समर्थकों ने वीपी सिंह के लिए गढ़ा था।

जिनका नाम किरण बेदी ने लिया है, उन तीनों को धन से बड़ा प्यार है। इसीलिए वर्ल्ड बैंक से लेकर भारत और विदेश के आला अमीरों तक इनके तार जुड़े हैं। बंदा अमीर होना चाहिए, वह कौन है, कैसे अमीर बना है, इसकी तहकीकात का काम बाबाओं का नहीं होता! यह 'फकीरी' खुद किरण बेदी और टीम अन्ना के पीछे मतवाले मीडिया तथा सिविल सोसायटी को भी बड़ी प्यारी है। फकीरी का यह नया अर्थ और ठाठ है, जो नवउदारवाद के पिठुओं ने गढ़ा है। भारत का भक्ति आंदोलन सर्वव्यापक था, जिसमें अनेक अंतर्धाराएं सक्रिय थीं। फकीर शब्द तभी का है। संत, फकीर, साधु, दरवेश - इनका जनता पर गहरा प्रभाव था। दरअसल, उन्होंने सामंती ठाठ-बाट के बरक्स विशाल श्रमशील जीवन के दर्शन को वाणी दी। ऐसा नहीं है कि उन्हें संसार और बाजार का ज्ञान और सुध नहीं है। 'पदमावत' में ऐसे बाजार का चित्रण है जहां एक-एक वस्तु लाखों-करोड़ों में बिकती है। लेकिन भक्त बाजार से नहीं बंधता। भक्तिकाल में फकीरी भक्त होने की कसौटी है। जो फकीर नहीं है, गरीब नहीं है, वह भक्त नहीं हो सकता। फकीरी महज मंगतई नहीं है। वह एक मानसिक गठन है, जिसे संसार में काम करते हुए उत्तरोत्तर, यानी साधना के जरिए पाया जाता है। वह हृद से बेहद में जाने की साधना है, जहां भक्त केवल प्रभु का रह जाता है। जब गरीब ही भक्त हो सकता है, तो प्रभु 'गरीब नेवाज' होगा ही। यह साधना बिना सच्चे गुरु के संभव नहीं होती। इसीलिए उसे गोविंद से बड़ा बताने का भी चलन है। जाहिर है, फकीरी गुरु होने की भी कसौटी है।

दिन-रात भारी-भरकम अनुदान और दान के फेरे में पड़े तथाकथित गुरुओं और संतों को क्या कहेंगे - फकीर या फ्राड! काफी पहले हमने 'त्याग का भोग' शीर्षक से एक 'समय संवाद' लिखा था। उसमें सोनिया गांधी के त्याग का निरूपण किया गया था। अन्ना हजारे सरीखों के आरएसएस टाइप त्याग के चौतरफा पूँजीवाद और उपभोक्तवाद चलता और फलता है। 'त्यागी महापुरुषों' को उस व्यवस्था से कोई परेशानी नहीं होती। क्योंकि वहां दान के धन से ही सामाजिक काम किए जाते हैं। दान सामंत देता है या पूँजीपति या दलाल, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

हमारे मित्र जयकुमार ने सुबह की सैर में हमें 'खुशखबरी' दी कि बाबा रामदेव डॉक्टर लोहिया का नाम ले रहे थे। करीब दो साल पहले साथी प्रोफेसर हरभगवान मेंहदीरता (अब दिवंगत) ने भी हमें बताया था कि रामदेव के एक टीवी कार्यक्रम में उन्हें डॉ. लोहिया का चित्र दिखा। इस देश में गांधी के नाम पर कोई भी जबान साफ कर सकता है। न किसी को ऐतराज होता है, न अचरज। लगभग ऐसी ही गति क्रांतिकारियों की बन चुकी है। वे माफियाओं से लेकर बाबाओं तक के हीरो हैं। लेकिन अन्ना के अंबेडकर का और रामदेव के लोहिया का नाम लेने पर किसी को भी कौतुक होगा। अज्ञेय ने लिखा है, 'कालिदास की पीड़ा थी, अरसिकों को कवित निवेदन न करना पड़ जा जाए; केशवदास की पीड़ा थी, चंद्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि-कहि न चली जाए; अज्ञेय की पीड़ा है, मैं क्या जानता था यह गति होगी कि हिंदी विभागों में हिंदी के अध्यापकों द्वारा पढ़ाया जाऊंगा!' भारत में आत्मा मरने के पहले भी रहती है और मरने के बाद भी। लोहिया की आत्मा को जरूर कौतुक हुआ होगा कि भारत माता के नाम पर अपने उपभोक्ता उत्पाद बेचने वाले उनका नाम ले रहे हैं!

सुना है रामदेव का अपना 'विचार-साहित्य' भी है। उसके बारे में जो व्यौरे इधर-उधर पढ़ने को मिलते हैं, उनसे उनकी कुंठित मानसिकता का पता चलता है। वे दरअसल कुंठित मानसिकता के प्रतिनिधि बाबा हैं। भारत के मध्यवर्ग ने पढ़ना-लिखना बिल्कुल छोड़ दिया है। स्कूल स्तर पर की गई विभिन्न विषयों की पढ़ाई भी उसके जीवन में नहीं झलकती। मध्यवर्ग की नई से नई बसने वाली कालोनियों में सब कुछ मिलेगा, सिवाय विचार और रचना-साहित्य के। जहां तक पत्रिकाओं का सवाल है, मनोरंजन, खेल, प्रतियोगिता और राजनीतिक खबरों की पत्रिकाओं के अलावा वहां कुछ नहीं मिलता। मध्यवर्ग ने कर्मकांड को संस्कृति और अंधविश्वास को आस्था मान लिया है। ऐसे में कुंठित मानसिकता ही पनपती है, जो मीडिया की मार्फत परवान चढ़ी हुई है। जब 'पढ़े-लिखे' मध्यवर्ग का यह हाल है, तो गांवों और कस्बों के बारे में अंदाज लगाया जा सकता है। ज्यादातर फिल्में, सीरियल और धार्मिक-आध्यात्मिक प्रवचन कुंठित मानसिकता का प्रतिफलन और उसे पोसने वाले होते हैं। उपभोक्तवाद के शिकंजे में पूरी तरह फंसा भारत का 'महान' मध्यवर्ग भावनाओं, संबंधों, मूल्यों आदि को लेकर अजीबो-गरीब आचरण करता है। (मध्यवर्ग की इस परिघटना पर हम आगे कभी विस्तार से लिखेंगे।)

यह फंसाव राजनीति में भी देखने को मिलता है। ताजा उदाहरण सीपीएम का 'देसी समाजवाद' है। संगठित और अपने को विचारधारात्मक कहने वाली पार्टी कैसे टोटके कर रही है! क्या अभी तक विदेशी समाजवाद चलाया जा रहा था? पार्टी से पूछा जा सकता है कि आचार्य नरेंद्रदेव, जेपी और लोहिया के बाहर देसी समाजवाद के कौन सोत हैं? लेकिन यह किसी ने नहीं पूछा और पूरे मीडिया में सीपीएम प्रस्तावित 'भारतीय समाजवाद' की खूब धूम रही। बाबा रामदेव और श्री श्री

रविशंकर को नेताओं से और नेताओं को इन दोनों से संबंध बनाने का बड़ा शौक है। रामदेव 'व्यवस्था परिवर्तन' के लिए राजनीतिक पार्टी बनाने से पहले लालू यादव और नीतीश कुमार के एक साथ चहेते थे। श्री श्री की हसरतें 'जीवन की कला' का कारोबार शुरू करने के समय से ही जवान रही हैं। हमें ज्यादा हैरानी नहीं हुई जब देखा कि वे दिल्ली विश्वविद्यालय में घुस गए हैं। एक दिन हम स्टाफ रूम में बैठे थे। चार-पांच युवक-युवतियां भक्तिभाव से भरे हुए आए और सूचना दी कि श्री श्री फलां तारीख को हिंदू कॉलेज में आ रहे हैं। फिर कहने लगे कि वे श्री श्री और कार्यक्रम के बारे में क्लास को संबोधित करना चाहते हैं। हमने उन्हें कहा कि अपना पोस्टर लगाइए और जाइए। हमें लगा कि क्या सचमुच हमारा बीमार समाज बाबाओं की बदौलत चल रहा है!

रामदेव के साथ न्याय करते हुए कहा जा सकता है कि जब अपने को समाजवादी कहने वाले नेता और पार्टियां कारपोरेट घरानों की राजनीति करते हैं, तो बाबा के लोहिया को चेला मूँड़ने पर क्योंकर ऐतराज किया जा सकता है? यूपी के नए मुख्यमंत्री प्रधानमंत्री से मिलने गए तो उन्होंने वही सब बातचीत की जो दूसरे मुख्यमंत्री करते हैं। सोना से उसकी मां और भारतमाता की गोद छीन लेने वाली नवउदारवादी नीतियों पर उन्होंने जरा भी सवाल नहीं उठाया। इसके बावजूद लोगों को वहां 'लोहिया का समाजवाद' फलीभूत होने की संभावनाएं नजर आ रही हैं। भारतीय समाज और राजनीति में यह जो स्थिति बनी है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए विडंबना, विद्रूप, विसंगति जैसे पद अपर्याप्त हैं। जब कोई समाज अंधी गली में प्रवेश कर जाता है तो यही होता है। जिस आंदोलन की पीठ पर उद्योग और व्यापार-जगत की हस्तियां/संस्थाएं हैं, बड़े-बड़े एनजीओ हैं, संघियों के उसमें शामिल होने की बात तो समझ आती है, समाजवादी, गांधीवादी, मार्क्सवादी उसमें डुबकी लगा रहे हैं!

राजनैतिक समझ के अभाव में अन्ना और रामदेव नहीं समझ सकते कि वे क्या कह और कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, वे वही कह और कर रहे हैं जो उनकी समझदारी है। उनकी समझदारी के मेल का समाज बना हुआ है, तो उनका कहना और करना रंग लाता है। उनके सिपहसालार उन्हें किसी विशेष नेता या विचारक का नाम लेने और मुद्दा उठाने की सलाह देते हैं। लेकिन किसी के कहने पर नेता या विचारक-विशेष का नाम लेना या किसी विशेष मुद्दे को उठाना रंग को चोखा नहीं कर सकता। इसके पीछे एक जिंदगी बीत जाती है। लेकिन जिनकी राजनीतिक समझदारी है, जो महत्वपूर्ण भूमिका या तो निभा चुके हैं या निभा रहे हैं, उन्हें जवाब देना पड़ेगा।

यह विचारणीय है कि अगर 1990 के पहले के माहौल में पले-बढ़े लोगों का यह आलम है, तो आगे आने वाली पीढ़ियों का क्या रुख-रवैया होगा? आज अगर भले ही थोड़े लोग, कम से कम संविधान की कसौटी पर, सही हैं तो आगे ज्यादा सही होने की संभावना बनी रहेगी। लेकिन आज अगर सही नहीं हैं, तब आगे भी सही नहीं होंगे। भ्रष्टाचार विरोध की ओट बहुत दिन तक साथ नहीं दे सकती। विदेशी बैंकों में जमा काला धन हो या यहां की लूट, दोनों पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत हैं। काला धन फिर जमा हो जाएगा। जमा करने वालों में बाबाओं के चेले नहीं हैं या होंगे, इसकी क्या गारंटी है?

आजकल प्रैस परिषद के अध्यक्ष मार्कडे काटजू साहब खासे चर्चा में रहते हैं। उन्होंने कई मुद्दों, विशेषकर मीडिया से संबंधित, पर दो टूक बात रख कर बहस पैदा की है। कुल मिला कर, बाजार और विचार की बहस में उन्होंने विचार पर बल दिया। उन्होंने यह भी कहा है कि जंतर-मंतर पर तिरंगा लहराने से भ्रष्टाचार दूर नहीं होगा। हमें लगा कि काटजू साहब की वैचारिकता नवउदारवाद विरोधी रुख अछितयार करेगी। उनके पद और प्रतिष्ठा को देखते हुए उसका लाभ नवउदारवाद विरोधी मुहिम को मिलेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वे शासक वर्ग के साथ ही खड़े हैं। अंग्रेजी का अंधविश्वास उन पर भी वैसा ही हावी है। उन्होंने अंग्रेजी न जानने वालों को बैलगाड़ी हांकने वाला कहा है। उनका तर्क मानें तो केवल अंग्रेजी जानने वाले ही भारतमाता के बेटे-बेटियां हैं। आपको ध्यान होगा ऐसा ही तर्क सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व प्रमुख न्यायाधीश बालाकृष्णन साहब ने भी दिया था। उन्होंने कहा अंग्रेजी नहीं जानने वाले केवल चपरासी बन सकते हैं। उनकी नजर में चपरासी और उनके बेटे-बेटियां भारतमाता के बेटे-बेटियां नहीं हैं, और न ही कभी बन पाएंगे।

काटजू साहब और बालाकृष्णन साहब के हिसाब से सोना का भारतमाता पर कोई दावा ही नहीं है। दूरदर्शन पर देहाती महिलाओं को अंग्रेजी में बताया जाता है कि उनकी बेटियां अच्छी पढ़ाई करती हैं, यानी अंग्रेजी बोलती हैं। नवउदारवाद के पिछले 20 सालों में हिंदुस्तान का शासक-वर्ग अंग्रेजी का अंधा हो चुका है। लोहिया इस वर्ग के इसलिए अपराधी हैं कि उन्होंने अंग्रेजी का विरोध कर सभी बच्चों को भारतमाता की गोद में बिठाना चाहा था; जो उनका प्राकृतिक हक है।

अन्ना आंदोलन से भाषा के साथ दूसरा अवमूल्यन प्रतिरोध की अहिंसक कार्यप्रणाली, जिसे लोहिया ने सिविल नाफरमानी कहा है, का हुआ है। इस मायने में कि जिस पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था और शोषण के खिलाफ उसका आविष्कार और उपयोग हुआ, उसी के समर्थन में उसे लगाया जा रहा है। इसके गहरे और दूरगमी परिणाम होने हैं। जाहिर है, इससे अहिंसक आंदोलन को गहरा धक्का लगेगा। अहिंसक कार्यप्रणाली में विश्वास करने वाले कई महत्वपूर्ण

जनांदोलनकारी और राजनैतिक कार्यकर्ता इस आंदोलन को समर्पित हो गए हैं। यह शेखी भी जताई जाती है कि अरब देशों में जहां बदलाव के लिए हिंसा हो रही है, वहां यह आंदोलन पूरी तरह अहिंसक है। लेकिन यह सच्चाई छिपा ली जाती है कि यह आंदोलन किसी बदलाव के लिए नहीं है। अपने स्वार्थ के लिए अहिंसक और अनुशासित रहना कोई बड़ाई की बात नहीं है। नवउदारवाद के पक्ष में अहिंसा को अगवा किया गया है। और उसके विरोध के लिए हिंसा का रास्ता छोड़ा गया है। मनमोहन सिंह और चिंदंबरम यहीं चाहते हैं।

इधर खबर आई है कि टीम अन्ना के एक सदस्य मुफ्ती शहमीम कासमी साहब को स्वामी अग्निवेश बना दिया गया है! वे टीम का मुस्लिम चेहरा थे। टीम अन्ना के सरदार ने कहा है कि कासमी चर्चा के किसी नतीजे पर पहुंचने से पहले ही उसकी रिकार्डिंग कर रहे थे, जिसे वे चैनलों को देते। अजीब बात है। चर्चा के दौरान रिकार्डिंग करने में भला क्या बुराई हो सकती है। सही फैसला सही चर्चा से ही होकर आता है। इसलिए चर्चा की जानकारी टीम के बाहर भी साझा हो, तो इसमें क्या ऐतराज हो सकता है? हालांकि कासमी साहब ने कहा है कि उन्हें रिकार्डिंग करना आता ही नहीं है। मतभेद के कारण दूसरे हैं। जो भी हो, एक रिकार्डिंग आदमी के दिमाग में भी चलती है। आपसी चर्चा के दौरान टीम अन्ना के सदस्यों के दिमाग में भी चलती होगी। क्या टीम अन्ना के सरदार का उसे भी प्रतिबंधित करने का इरादा है? लोकतंत्र और पारदर्शिता के पहरेदार इस पर क्या कहते हैं, अभी तक सुनने में नहीं आया है। कौन नहीं जानता कि विदेशी धन खाने वाले एनजीओ और उन्हें चलाने वाले फर्जीवाड़े पर पलते हैं।

मीडिया और सिविल सोसायटी के समर्थन का जो नशा टीम अन्ना को हुआ है, वह जल्दी नहीं टूटने वाला है। 'हम एक हैं' की घोषणा करते हुए रामदेव और अन्ना फिर साझी हो गए हैं। वे अलग कभी थे ही नहीं। हमने कहा था कि कांग्रेस समेत ये सब एक पूरी टीम हैं। इस टीम का कारोबार आगे और चलेगा। प्रधानमंत्री के प्रमुख आर्थिक सलाहकार ने हाल में कहा है कि अब से आगे 2014 के आम चुनाव तक आर्थिक सुधारों की गति धीमी रहेगी। लेकिन आम चुनाव के बाद सुधारों में यथावत और विधिवत तेजी आ जाएगी। यानी सरकार किसी की भी हो, नवउदारवादी व्यवस्था इसी रूप में जारी रहेगी। कभी मनमोहन सिंह और कभी अटलबिहारी वाजेपयी द्वारा उछाला गया जुमला - 'आर्थिक सुधारों का मानवीय चेहरा' - कभी का फालतू हो चुका है। अफसोस की बात है कि यह तय हो चुका है कि चुनावी महाभारतों का देश की व्यवस्था के संदर्भ में कोई मायना नहीं रह गया है। आर्थिक सलाहकार के बयान पर सबसे पहले और सबसे तीखी प्रतिक्रिया भाजपा की थी। उसने कहा कि आर्थिक सुधारों की तेजी पर ब्रेक सरकार की असफलता की निशानी है।

नवउदारवाद बढ़ेगा, कांग्रेस के राज में भी और भाजपा के राज में भी। जाहिरा तौर पर उसके दो नतीजे होंगे। एक तरफ पहले से बदहाल आबादी की बदहाली में तेजी आएगी और दूसरी तरफ पहले से विकराल भ्रष्टाचार और तेज होगा। इसके साथ यह भी होगा कि जनता की बदहाली के अंधकार को लूट के माल से मालामाल होने वाले 'शाहनिंग इंडिया' की चमक से ओट करने की कोशिश की जाएगी और दूसरी ओर कठोर कानून बनाने की मांग करके भ्रष्टाचार पैदा करने और बढ़ाने वाली व्यवस्था पर परदा डालने का खेल रचा जाता रहेगा। जन लोकपाल कानून यथारूप में बन जाने पर आगे और कड़े कानून की जरूरत उसके पैरोकार और वारिस बताएंगे। भले ही अभी तक कड़े कानूनों की दौड़ का अंत सैनिक तानाशाही में होता रहा है।

नवउदारवाद ने टीम अन्ना का रूप धर कर जनांदोलनकारियों का अपने हिसाब से पूरा इस्तेमाल कर लिया है। मुख्यधारा राजनीति के अंतर्गत फर्क होने का दावा करने वाले भी उस रूप के चक्कर में आ गए। भाकपा के वयोवृद्ध नेता एबी बर्धन रामलीला मैदान में हाजिरी लगाने पहुंचे। आगे नवउदारवाद के विरोध में अभियान जीरो से शुरू होगा।

तो टीम अन्ना भारतमाता को घेरने वाले कपूर्तों की साथी हैं। इसके अलावा उसका कोई और चरित्र होता या कुछ अच्छे लोगों के उसमें शामिल होने के चलते बन पाता, तो वह सामने आ चुका होता। यही सच्चाई है। इसका विश्लेषण जैसे और जितना चाहें कर सकते हैं।

भारतमाता धरतीमाता

हम यह नहीं कहते कि सोना अपने घर, गांव, कस्बे, शहर तक महदूद रहे। लोहिया ने कहा था देशमाता के साथ हर इंसान की एक धरतीमाता होती है। लोहिया ने स्टालिन की बेटी स्वेतलाना के भारत में बसने के अनुरोध का समर्थन किया था। यह कितनी सुंदर बात होगी कि सोना भारतमाता के साथ धरतीमाता की बेटी बने। दुनिया के किसी भी कोने में जाए। घूमे, काम करे, सीखे, सिखाए, मित्र बनाए, मन करे तो वहीं शादी करे, भले ही बस जाए। ऐसा होने पर वह भारतमाता के ज्यादा फेरे में न पड़े तो ही अच्छा है। बाहर अगर उसका निधन होता है, तो अंतिम क्रिया वहीं संपन्न हो।

अभी तक देश-विदेश के इक्का-दुक्का लोगों ने आदिवासी क्षेत्रों में रह कर वहां की लड़कियों से शादी की है। आदिवासी लड़कियां बाहर जा कर ऐसा करें तो बराबर की बात बनेगी। हम किसानों और मजदूरों की लड़कियों के लिए भी ऐसा सपना देखते हैं कि वे स्वतंत्रतापूर्वक बड़ी हों और और देश-दुनिया में अपनी जगह बनाएं। लेकिन समस्या यही है कि जब तक वे भारतमाता की गोद से बहिष्कृत हों, धरतीमाता की गोद उन्हें उपलब्ध नहीं हो सकती।

हमने ऊपर देखा कि भारतमाता किस कदर घिर गई है। यह धेरा टूटे, इसके लिए हिंदुस्तान में एक बड़ी और बहुआयामी क्रांति की सख्त और तत्काल जरूरत है। उस क्रांति के कुछ सूत्र लोहिया ने दिए थे। लेकिन शासकवर्ग और उसका क्रीतदास बौद्धिकवर्ग प्रतिक्रांति पर डटा रहा। सत्ता के साथ मिल कर लोहिया के राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक-दार्शनिक-सांस्कृतिक चिंतन को स्कूल से लेकर उच्च शिक्षा तक बहिष्कृत करके अपना 'वाद' बचा और चला लेने की खुशी पालने वाले लोगों ने हिंदुस्तान की क्रांति के साथ गहरी दगाबाजी की है। देश में उथल-पुथल है, उसका फायदा लेना चाहिए, कह कर टीम अन्ना और उसके आंदोलन में जुटे लोग भी जाने-अनजाने वही कर रहे हैं।